प्राणायाम : एक चिन्तन

☐ साध्वी दिव्यप्रभा, एम. ए.

प्राणायाम प्राणों को साधने की एक विधि विशेष है। प्राण का अर्थ वायु है। श्वास को अन्दर लेना, बाहर निकालना और श्वास को शरीर के अन्दर रोकना इन तीनों क्रियाओं का सामूहिक नाम प्राणायाम है। जो वायु जीवन धारण करती है वह प्राणवायु कहलाती है। प्राण ही जीवन का आधार है। आचार्य पतंजलि ने योग के आठ अंग माने हैं, उनमें प्राणायाम का चतुर्थ स्थान है।[1] उन्होंने प्राणायाम को मुक्तिसाधना में उपयोगी माना है। जैन साधना पद्धति में प्राणायाम का उल्लेख तो है किन्तु उसे मुक्ति की साधना में आवश्यक नहीं माना है। आवश्यक निर्युक्ति में आचार्य भद्रबाहु ने प्राणायाम का निषेध किया है, क्योंकि प्राणायाम से वायुकाय के जीवों की हिंसा की संभावना है।[2] इसी तरह आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र में[3] और उपाध्याय यशोविजय ने भी "जैनदृष्ट्या परीक्षितं पातंजलि योगदर्शनं" ग्रंथ में[4] प्राणायाम को मुक्ति की साधना के रूप में स्वीकार नहीं किया है। उनके अभिमतानुसार प्राणायाम से मन शान्त नहीं होता अपितु विलुप्त होता है। प्राणायाम की शारीरिक दृष्टि से उपयोगिता है। यशोविजयजी का मन्तव्य है कि प्राणायाम आदि हठयोग का अभ्यास चित्तनिरोध और परमइन्द्रियगेय का निश्चित उपाय नहीं है। निर्युक्तिकार ने एतदर्थ ही इसका निषेध किया है। स्थानांगसूत्र में अकाल मृत्यु प्राप्त होने के सात कारण प्रतिपादित किये हैं, उनमें आनप्राणनिरोध भी एक कारण है।[5] आवश्यकनिर्युक्ति का गहराई से अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि उसमें उच्छ्वास के पूर्ण निरोध का तो निषेध है, पर संपूर्ण प्राणायाम का निषेध नहीं है। क्योंकि उन्होंने उच्छ्वास को सूक्ष्म करने का वर्णन किया है।[6]

रेचक, पूरक और कुम्भक—ये तीन प्राणायाम के अंग हैं।[7] अत्यन्त प्रयत्न करके नासिका-ब्रह्मरंध्र और मुख-कोष्ठ से उदर में से वायु को बाहर निकालना रेचक है।[8] बाहर के पवन को खींचकर उसे उपान द्वार तक कोष्ठ में भर लेना पूरक है।[9] और नाभिकमल में स्थिर करके उसे रोक लेना कुम्भक है।[10] कितने ही आचार्यों के अभिमतानुसार रेचक पूरक, कुम्भक के साथ प्रत्याहार, शान्त, उत्तर और अधर ये चार भेद मिलाने से प्राणायाम के सात प्रकार होते हैं।[11] नाभि में से खींचकर हृदय में और हृदय से खींचकर नाभि में इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान तक पवन को ले जाना प्रत्याहार है।[12] तालु, नासिका और मुख से वायु का निरोध करना शान्त है।[13] कुम्भक में पवन को नाभिकमल में रोकते हैं और शान्त प्राणायाम में वायु को नासिका आदि जो वायु को निकालने के स्थान हैं वहाँ रोका जाता है। बाहर से वायु को ग्रहण कर उसे हृदय आदि में स्थापित कर रखना उत्तर प्राणायाम है और उसी वायु को नीचे की ओर ले जाकर धारण करना अधर प्राणायाम है।[14]

प्राणवायु के प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पाँच प्रकार हैं। प्राणवायु नासिका के अग्रभाग, हृदय, नाभि, पैर के अंगुष्ठ पर्यन्त फैलने वाला है।[15] उसका वर्ण हरा बताया गया है। उसे रेचक क्रिया, पूरक क्रिया और कुंभक क्रिया के प्रयोग एवं धारणा से नियंत्रित करना चाहिए। अपानवायु का रंग श्याम है। गर्दन के पीछे की नाड़ी, पीठ, गुदा और एडी में उसका स्थान है। इन स्थानों में गमागम रेचक की प्रयोगविधि से उसे नियन्त्रित कर सकते हैं। समानवायु का वर्ण श्वेत है। हृदय, नाभि और सभी संधियों में उसका निवास है।[16] सभी स्थानों में पुनः-पुनः गमागम करने से उस पर नियन्त्रण किया जा सकता है।

उदानवायु का वर्ण लाल है। हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूकुटि एवं मस्तक में इसका स्थान है।[17] इन्हीं स्थानों में पुनः-पुनः गमागम करने से इस पर भी नियन्त्रण किया जा सकता है।

व्यानवायु का वर्ण इन्द्रधनुष के सदृश है। त्वचा के सर्वभागों में इसका निवास है।[18] प्राणायाम से इस पर नियन्त्रण किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन वायुओं को नियन्त्रित करने के लिए प्राणायाम के समय तत्सम्बन्धी बीजाक्षरों का ध्यान करना चाहिए, ऐसा आचार्यों ने बताया है। ये बीजाक्षर इस प्रकार हैं—

प्राणवायु

वायु	निवास	वर्ण	बीजाक्षर
प्राण	नासिका का अग्रभाग, हृदय, नाभि, पैर के अंगुष्ठ पर्यन्त	हरा	यैं
अपान	गर्दन के पीछे की नाडी, पीठ, गुदा, एड़ी	काला	पैं
समान	हृदय, नाभि, सभी संधियाँ	श्वेत	वैं
उदान	हृदय, कंठ, तालु, भ्रूकुटि, मस्तक	लाल	रौं
व्यान	त्वचा का सर्व भाग	इन्द्रधनुषो	लौं

नासिका प्रभृति स्थानों से पुनः-पुनः वायु का पूरण व रेचन करने से गमागम प्रयोग होता है और उसका अवरोध अर्थात् कुम्भक करने से धारण प्रयोग होता है। नासिका से बाहर के पवन को अन्दर खींचकर उसे हृदय में स्थापित करना चाहिए। वह यदि पुनः-पुनः दूसरे स्थान पर जाता है तो उसे पुनः-पुनः निरोध करके वश में करना चाहिए।[१९] वायु को नियन्त्रित करने का यह उपाय प्रत्येक वायु के लिए उपयोगी है। वायु के निवास के जो-जो स्थान आचार्यों ने बतलाये हैं वहाँ पर प्रथम पूरक प्राणायाम करना चाहिए अर्थात् नासिका द्वारा बाहर से वायु को अन्दर खींचकर उस स्थान पर रोकना चाहिए। ऐसा करने से खींचने की व रोकने की दोनों क्रियाएँ स्वतः बन्द हो जायेंगी और वह वायु उस स्थान पर नियत समय तक स्थिर रहेगा। यदि कभी वह वायु बलात् दूसरे स्थान पर चला जाय तो उसे पुनः-पुनः रोककर और कुछ समय तक रेचक प्राणायाम अर्थात् नासिका के एक छिद्र से शनैः-शनैः उसे बाहर निकालना चाहिए और पुनः उसी नासिका छिद्र से कुम्भक प्राणायाम करना चाहिए। इससे वायु अपने अधिकार में रहती है।

वीरासन, वज्रासन, पद्मासन आदि किसी भी आसन में अवस्थित होकर शनैः-शनैः पवन का रेचन करे। उसे पुनः नासिका के बायें छिद्र से अन्दर खींचे और पैर के अंगूठे तक ले जाये। मन को भी पैर के अंगुष्ठ में निरोध करे। फिर अनुक्रम से पवन के साथ पैर के तल भाग, एड़ी, जाँघ, जानु, उरू, अपान, उपस्थ, नाभि, पेट, हृदय, कंठ में धारण करे और उसे ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाय और पुनः उसी क्रम से उसे लौटाये और फिर पैर के अंगूठे में ले आये। इसके बाद वहाँ से उसे नाभि-कमल में ले जाकर वायु का रेचन करे।[२०]

यह नियम है कि जहाँ मन है वहाँ पर पवन है और जहाँ पर पवन है वहाँ मन है। अतः समान क्रिया वाले मन और पवन क्षीर-नीर की भाँति परस्पर मिले हुए हैं। मन और पवन इन दोनों में से एक के नष्ट होने पर दूसरा भी नष्ट हो जाता है। आत्मा में उपयोग को अवस्थित करने से श्वास शनैः-शनैः चलने लगता है। श्वास के शनैः-शनैः चलने से मन की प्रवृत्ति भी मन्द पड़ जाती है। कुछ व्यक्ति ध्यान की अवस्था में मन को स्थिर करने का प्रयास करते हैं, पर प्राणों पर विजय न होने से वह इतस्ततः परिभ्रमण करता है। जब पवन पर विजय होती है तो मन पर स्वतः विजय हो जाती है।

प्राणवायु को जीतने से जठराग्नि प्रबल होती है। यह सभी जानते हैं कि पवन ही जीवन है। भोजन और पानी के बिना महीनों तक प्राणी जीवित रह सकता है; किन्तु श्वास के बिना नहीं। हम श्वास लेते हैं जिससे वायु अन्दर जाती है। वायु में आक्सीजन रहती है जिसकी शरीर को अत्यधिक आवश्यकता है। वायु में स्थित आक्सीजन ही जीवन का आधार है। यदि वायु में आक्सीजन न हो तो जीवन निश्शेष हो जायेगा। प्राणवायु पर ही सभी वायु ठहरी हुई हैं। इससे शरीर में लघुता आती है। यदि शरीर के किसी भी अवयव में कहीं भी घाव हो जाय तो समान-वायु और अपान वायु पर नियन्त्रण करने से जख्म शीघ्र भर जाते हैं। टूटी हुई हड्डियाँ भी जुड़ जाती हैं। जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है। मल-मूत्र कम हो जाते हैं तथा व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।[२१] उदानवायु पर विजय प्राप्त करने से मानव में ऐसी शक्ति समुत्पन्न होती है कि वह चाहे तो मृत्यु के समय अर्चि-मार्ग अथवा दशम द्वार से प्राण त्याग सकता है। न उसे पानी से किसी प्रकार की बाधा ही उपस्थित हो सकती है और न कंटकादि कष्ट ही। व्यानवायु की विजय से शरीर पर सर्दी-गर्मी का असर नहीं होता, शरीर में अपूर्व तेज की वृद्धि होती है और निरोगता प्राप्त होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है।[२२] जिस स्थान पर रोग उत्पन्न हुआ हो उसकी शांति के लिए उस स्थान पर प्राणादि वायु को रोकना चाहिए।[२३] उस समय प्रथम पूरक प्राणायाम करके उस भाग में कुम्भक प्राणायाम करना चाहिए।

पैर के अंगुष्ठ, एड़ी, जंघा, घुटना, उरू, अपान, उपस्थ में अनुक्रम से वायु को धारणा करने से गति में शीघ्रता और बल की प्राप्ति होती है।[२४] नाभि में वायु को धारण करने से ज्वर नष्ट हो जाता है। जठर में धारण करने से मल शुद्धि होती है और शरीर शुद्ध होता है। हृदय में धारण करने से रोग और वृद्धावस्था नहीं आती। यदि वृद्धावस्था आ गयी तो उस समय उसके शरीर में नौजवानों की-सी स्फूर्ति रहती है।[२५] कंठ में वायु को धारण करने से भूख-प्यास नहीं लगती है। यदि कोई व्यक्ति क्षुधा-पिपासा से पीड़ित हो तो उसकी क्षुधा और पिपासा मिट जाती है। जिह्वा के अग्रभाग पर वायु का निरोध करने से रस ज्ञान की वृद्धि होती है। नासिका के अग्रभाग पर वायु को रोकने से गन्ध का परिज्ञान होता है। चक्षु में धारण करने से रूपज्ञान की वृद्धि होती है।[२६] कपाल व मस्तिष्क में वायु को धारण करने से कपाल-मस्तिष्क सम्बन्धी रोग नष्ट हो जाते हैं तथा क्रोध का उपशमन होता है। ब्रह्मरन्ध्र में वायु को रोकने से साक्षात् परमात्मा के दर्शन होते है।[२७] रेचक प्राणायाम से उदर की व्याधि व कफ नष्ट होता है। पूरक प्राणायाम से शरीर पुष्ट होता है, व्याधि नष्ट होती है।[२८] कुम्भक प्राणायाम करने से हृदयकमल उसी क्षण विकसित हो जाता है। हृदयग्रंथि का भेदन होने से बल की अभिवृद्धि होती है, वायु में स्थिरता आती है।[२९] प्रत्याहार करने से शरीर में बल और तेज की वृद्धि होती है। शान्त-प्राणायाम से वात, पित्त, कफ या सन्निपात की व्याधि नष्ट होती है। उत्तर और अधर प्राणायाम कुम्भक को स्थिर बनाते हैं।[३०]

सारांश यह है कि निर्युक्ति आदि में प्राणायाम का निषेध किया गया, पर जैन साधना में कायोत्सर्ग का विशिष्ट स्थान रहा है। दशवैकालिक में अनेक बार कायोत्सर्ग करने का विधान है। कायोत्सर्ग में कालमान श्वासोच्छ्वास से ही गिना गया है। आचार्य भद्रबाहु ने दैवसिक कायोत्सर्ग में सौ उच्छ्वास, रात्रिक कायोत्सर्ग में पचास, पाक्षिक में ३००, चातुर्मासिक में ५००, और सांवत्सरिक कायोत्सर्ग में १००८ उच्छ्वास का विधान किया है। अन्य अनेक अवसरों पर भी कायोत्सर्ग का विधान है। श्वासोच्छ्वास का कालमान एक चरण माना गया है। श्वासोच्छ्वास की सूक्ष्म प्रक्रियाओं की जैन साहित्य में जो स्वीकृति है वह एक प्रकार से प्राणायाम की ही स्वीकृति है। इस दृष्टि से जैन परम्परा में भी प्राणायाम स्वीकार किया गया है। जैन साधना में जो कायोत्सर्ग की साधना है वह प्राणायाम से युक्त है। जैन आगमों में दृष्टिवाद जो बारहवाँ अंग है, उसमें एक विभाग पूर्व है। पूर्व का बारहवाँ विभाग प्राणायुपूर्व है। कषाय पाहुड में उस पूर्व का नाम प्राणवायु कहा है जिसमें प्राण और अपान का विभाग विस्तार से निरूपित है। प्राणायु या प्राणवायुपूर्व के विषय वर्णन से यह परिज्ञात होता है कि जैन मनीषी प्राणायाम से सम्यक् प्रचार से परिचित थे।

सन्दर्भ तथा सन्दर्भ स्थल :

१ योग सूत्र २-२९
२ (क) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १५२४।
(ख) आवश्यकचूर्णि—१५२४ चूर्णि।
३ योगशास्त्र ६-४; ५-५।
४ जैनदृष्ट्या परीक्षितं पातंजलि योगदर्शनम्—२-५५।
५ स्थानांग ७।
६ आवश्यकनिर्युक्ति अवचूर्णि गाथा १५२४।
७ रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकश्चेति स त्रिधा।—**योगशास्त्र प्र. ५, श्लो. ४**
८ योगशास्त्र ५/६।
९ वही, ५/७।
१० वही, ५/७।
११ वही, ५/५।
१२ वही, ५/८।
१३ वही, ५/८।
१४ वही, ५/९।
१५ वही, ५/१४।
१६ वही, ५/१६; ५/१७।
१७ वही, ५/१८।
१८ वही, ५/२०।
१९ वही, ५/१९।
२० वही, ५/२७-३१।
२१ वही, ५/२।
२२ वही, ५/२४।
२३ वही, ५/२५।
२४ वही, ५/३२।
२५ वही, ५/३३।
२६ वही, ५/३४।
२७ वही, ५/३४।
२८ वही, ५/१०।
२९ वही, ५/११।
३० वही, ५/१२।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org